सँस्कृत भाषा शिक्षण एवम मनोविज्ञान

By:Raghvendra Sir

सँस्कृत भाषा शिक्षण

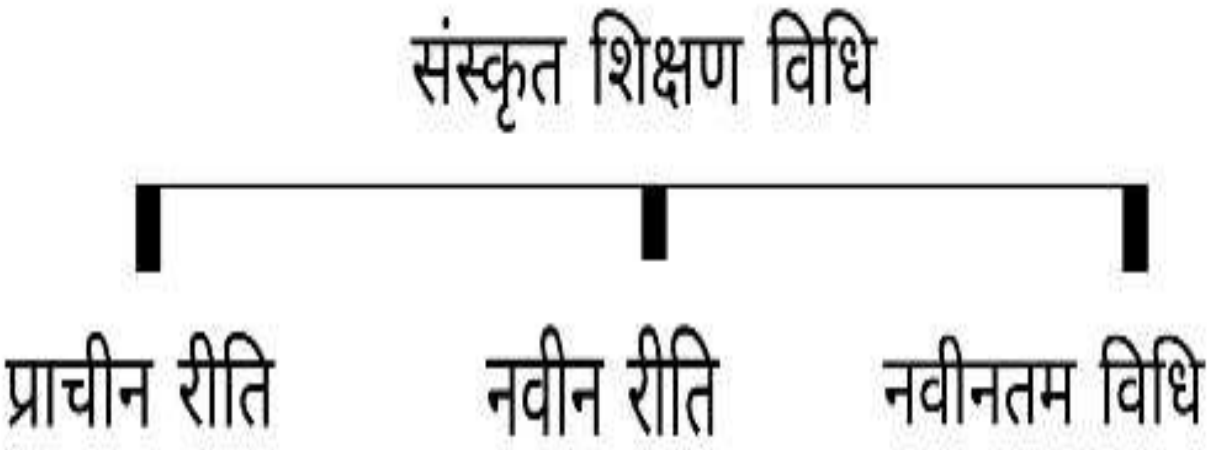

इकाई 1- संस्कृत शिक्षण की विभिन्न विधियाँ

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 संस्कृत शिक्षण की विभिन्न विधियाँ
    1.3.1 पारंपरिक विधि
    1.3.2 पाठ्यपुस्तक विधि
    1.3.3 सुगम पद्धति अथवा निर्बाध विधि
    1.3.4 व्याकरण-अनुवाद विधि
    1.3.5 वार्तलाप विधि या संवाद विधि या संप्रेषणात्मक विधि
    1.3.6 आगमन-निगमन विधि
1.4 सारांश
1.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.6 शब्दावली
1.7 संदर्भ एवं सहयोगी ग्रंथ
1.8 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

भाषा व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करती है। यह मनुष्य को अपने विचारों को संप्रेषित करने के योग्य बनाती है। अतः, इसका शिक्षण अत्यंत ही प्रभावपूर्ण होना चाहिए। संस्कृत भाषा शिक्षण के लिए तो यह बात और भी आवश्यक हो जाती है क्योंकि संस्कृत भाषा तो भारतीय परिदृश्य में अत्यंत ही महत्वपूर्ण है। यह संपूर्ण ज्ञान-विज्ञान की भाषा है। यह साहित्य, संस्कृति एवं संस्कार की भाषा है। यह योग की भाषा है। अतः, इस भाषा का प्रभावी शिक्षण होना आवश्यक है। यह भाषा इतनी महत्वपूर्ण है फिर भी आज अपने उत्थान की प्रतीक्षा कर रही है। यह हमारी सबसे बड़ी विडंबना है। विद्यार्थियों एवं अभिभावकों में इसके प्रति सर्वथा अरुचि है। इस अरुचि को समाप्त कर इस भाषा को अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को वापस दिलाने के लिए भी वर्तमान परिवेश में इसका प्रभावी शिक्षण आवश्यक है। किसी भी भाषा के प्रभावी शिक्षण के लिए आवश्यक है कि उस भाषा के विद्वानों द्वारा तय की गई शिक्षण विधियों का प्रयोग किया जाय। यदि संस्कृत को विज्ञान की तरह से पढ़ाया जाय तो शायद शिक्षण कार्य उतना प्रभावी न हो। प्रस्तुत इकाई की रचना संस्कृत भाषा के प्रशिक्षित शिक्षकों को संस्कृत शिक्षण की विभिन्न विधियों का ज्ञान प्रदान करने के

लिए की गई है। प्रशिक्षु शिक्षकों से यह आशा की जाती है कि वह इन शिक्षण विधियों का समुचित प्रयोग अपने शिक्षण कार्य में करेंगे एवं संस्कृत भाषा के उत्थान में अपना सर्वश्रेष्ठ योगदान देंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप इस योग्य हो जाएँगे कि-

1. संस्कृत शिक्षण की विभिन्न विधियों को सूचीबद्ध कर सकेंगे
2. संस्कृत शिक्षण की पारंपरिक विधियों का वर्णन कर सकेंगे
3. संस्कृत शिक्षण की पाठ्यपुस्तक विधि की चर्चा कर सकेंगे
4. संस्कृत शिक्षण की सुगम या निर्बाध विधि की विवेचना कर सकेंगे
5. व्याकरण-अनुवाद विधि की इसकी विशेषताओं एवं सीमाओं सहित व्याख्या कर सकेंगे
6. संस्कृत शिक्षण के संवाद विधि या वार्तालाप विधि या संप्रेषणात्मक विधि का वर्णन कर सकेंगे
7. आगमन एवं निगमन विधि का उल्लेख कर सकेंगे

1.3 संस्कृत शिक्षण की विभिन्न विधियाँ

प्रत्येक विषय का चाहे वह भाषा हो या विज्ञान अपना अलग महत्व होता है। उनके अपने शैक्षणिक उद्देश्य होते हैं तथा उन शैक्षणिक उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए कुछ निश्चित विषयवस्तु होते हैं या यूँ कहले कि एक निश्चित पाठ्यक्रम होता है। प्रत्येक विषय के अधिगम परिणाम भिन्न-भिन्न होते हैं। अर्थात ज्ञान की एक इकाई या शाखा दूसरी इकाई या शाखा से आवश्यकता, शैक्षणिक उद्देश्य, विषयवस्तु, अधिगम परिणाम आदि के आधार पर भिन्न होते हैं। जब भिन्नता के इतने सारे आधार हैं तो फिर समस्त विषयों के लिए एक ही शिक्षण विधि का प्रयोग समीचीन नहीं है। प्रत्येक विषय में शिक्षण विधि के आधार पर विभिन्नता होनी चाहिए। इस तथ्य को ध्यान में रखकर प्रत्येक विषय के विद्वानों ने अपने-अपने विषय के लिए शिक्षण विधि या विधियों को निश्चित किया और आज भी इस दिशा में प्रयास कर रहे हैं ताकि उस विषय का प्रभाव- पूर्ण शिक्षण अधिगम हो सके। यहाँ हम संस्कृत शिक्षण की विभिन्न विधियों की चर्चा करेंगे।

3.1 पारंपरिक विधि

संस्कृत एक अति प्राचीन भाषा है। इसका शिक्षण भी अति प्राचीन काल से चला आ रहा है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि जब से भारत में शिक्षा की शुरुआत हुई तब से संस्कृत भाषा का अध्ययन-अध्यापन किया जा रहा है। भारत में शिक्षा की शुरुआत वैदिक काल से मानी जाती है। गुरुकुलों का जन्म वैदिक काल में शिक्षा प्रदाना करने की लिए हुआ इस बात के पर्याप्त साक्ष्य उपलब्ध हैं। इस प्रकार हम यह भी कहा सकते हैं कि वैदिका काल से ही या गुरुकुल के समय से ही भारत में संस्कृत का शिक्षण किया जा रहा है। उसा समय शिक्षण का कार्य हमारे ऋषियों द्वारा किया जाता था। वे सारे ऋषि मंत्रद्रष्टा थे।

उन्होंने शिक्षण की विविधा विधियों की खोजा की एवं उनकाअपने शिक्षण-अधिगम कार्य में प्रयोग किया। गुरुकुलों में संस्कृत शिक्षण के लिए प्रयोग में लाए जाने वाली विधियों के समूह को वर्तमान परिदृश्य में संस्कृत शिक्षण की पारंपरिक विधि की संज्ञा दी जाती है। उपनयन संस्कार के साथ छात्र का गुरुकुल में प्रवेश होता था। गुरु प्रारंभिक शिक्षा के रुप में छात्र को गायत्री मंत्र की दीक्षा देता था। छात्र उसी दिन से गुरुकुल का अंतेवासी हो जाता था एवं प्रतिदिन नित्यकर्म के बाद गुरु के समीप बैठ कर उनकी आज्ञा से वेदाध्ययन करता था। अध्ययन-अध्यापन कार्य का आरंभ एवं समापन दोनों ऊँ के उच्चारण के साथ होता था। गुरु एवं शिष्य द्वारा अध्ययन-अध्यापन के लिए जिन विधियों को प्रयोग में लाया जाता था उनमें से कुछ विधियों का वर्णन निम्नलिखित है:

1. **मौखिक एवं व्यक्तिगत शिक्षण पद्धति-** इस विधि में गुरु पहले वेद मंत्रों का उच्चारण करते थे तथा शिष्य उनका अनुकरण करते थे। उच्चारण में आने वाले प्रत्येक कठिनाई का गुरु द्वारा समाधान किया जाता था। शिष्य पुनः उनका उच्चारण करते थे। यहा चक्र तब तक चलता रहता था जबा तक कि शिष्य शुद्ध-शुद्ध उच्चारण करना नहीं सीखा लेता है। गुरु प्रत्येक विद्यार्थी की समस्या का व्यक्तिगत रुप से समाधान करता था। इस प्रकार व्यक्तिगत शिक्षा पर भी बल दिया जाता था।
2. **वाद-विवाद विधि-** इस विधि में पढ़ाए जाने वाले पाठ के पक्ष तथा विपक्ष में बातें कही जाती थी, तर्क दिए जाते थे, उदाहरण प्रस्तुत किए जाते थे और इस प्रकार प्रस्तावित विषय पर प्रकाश डाला जाता था। इससे विद्यार्थी में अपने विचारों को अभिव्यक्त करने की योग्यता आती थी। इस विधि के संदर्भ में ऋग्वेद में जानकारी दी गई है।
3. **प्रश्नोत्तर प्रणाली-** इस विधि में पाठ को प्रश्नोत्तर के रूप में पढ़ाया जाता था। प्रत्येक प्रश्न में दो या तीन पद्य होते थे तथा प्रत्येक व्याख्यान में 60 प्रश्न होते थे। प्रत्येक प्रश्न के बाद विद्यार्थी उसे दोहराता था और इस प्रकार क्रमिक रूप से संपूर्ण व्याख्यान समाप्त हो जाता था। इस विधि का वर्णन उपनिषदों में देखने को मिलता है। गंभीर विषयों को उपनिषदों में प्रश्न विधि के माध्यम से बताया गया है। प्रश्न का उत्तर देते समय गुरु, कथा, कहानी, उदाहरण आदि का भी प्रयोग किया करते थे और कभी-कभी प्रश्न का विस्तृत उत्तर देने के बजाय सिर्फ संकेत देते थे और विद्यार्थी उस संकेत के आधार पर प्रश्न का उत्तर ढूँढने का प्रयास करते थे। बौद्ध ग्रंथों में भी प्रश्न विधि का जिक्र मिलता है। मिलिंदपन्हो नामक ग्रंथ में यूनानी राजा मिनांडर बौद्ध भिक्षु नागसेन से बौद्ध धर्म के संबंध में अनेक प्रश्न करते हैं एवं नागसेन उनका उत्तर देते हैं।
4. **सूत्र पद्धति-** गंभीर तथ्यों को सूक्ष्म रूप से रूप में बताना ही सूत्र कहलाता है। व्याकरण एवं दर्शन के गंभीर तथ्यों को सूत्र विधि से ही पढ़ाया जाता था, यथा- 'अकुहविसर्जनियनांकंठः' अर्थात कवर्ग, विसर्ग और ह कंठ से बोले जाते हैं। 'पाणिनि' के सूत्र तो इस विधि के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं। आज भी कुछ अध्यापक इसका प्रयोग करते हैं। इस विधि से अध्ययन-अध्यापन करने से विद्यार्थी के स्मरण शक्ति सशक्त होती थी।

5. **कहानी कथन विधि-** इस विधि में कथा के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी। यह बाल मनोविज्ञान पर आधारित थी। बालक स्वभाव से ही कहानी प्रेमी होता है। अतः, कहानी के माध्यम से पढ़ने में अधिक रुचि प्रदर्शित करते थे। इस माध्यम से छात्रों को नैतिक शिक्षा दी जाती थी। विष्णु शर्मा ने राजकुमारों की कहानियों के माध्यम से ही नीतियों की शिक्षा दी थी। पंचतंत्र एवं हितोपदेश ऐसी ही कहानियों का संग्रह है। कहानी कथन विधि के अध्यय्न से एका बात स्पष्ट होती है कि हमारे पूर्वजों को बाल मनोविज्ञान का गहरा ज्ञान था। वे बालक को अपने शिक्षण के केंद्र में रखते थे। उस समय के केंद्र में सिर्फ पाठ्यवस्तु ही नहीं थी।
6. **भाषण विधि-** पाणिनी ने अपने ने अष्टाध्यायी में भाषण शब्द का कई बार प्रयोग किया है। इससे अनुमान लगाया जाता है कि प्राचीन काल में संस्कृत शिक्षण के लिए भाषण विधि का भी प्रयोग किया जाता था। इस विधि में गुरु प्रस्तावित पाठ पर भाषण देता था। भाषण के अंत में विद्यार्थी अपने शंकाओं को गुरु के समक्ष रखते थे और गुरु उन समस्याओं का समाधान करते थे। नालंदा विश्वविद्यालय में इस प्रकार के साथ बड़े-बड़े कक्षों के अवशेष मिले हैं जिनमें सामूहिक शिक्षण भाषण या वाद-विवाद के माध्यम से किया जाता था। यह विधि वर्तमान समय के व्याख्यान विधि से मिलती-जुलती है।
7. **मॉनिटोरियल मेथड** – पद 'मॉनिटोरियल' आंग्ल भाषा के शब्द मॉनिटर से बना है जिसका अर्थ होता है निरीक्षण करना या निरीक्षण करने वाला। वर्तमान समय में विद्यालयों में प्रत्येक कक्षा में एक मॉनिटर होता है जो कक्षा में अनुशासन बनाए रखने का कार्य करता है। प्राचीन काल में गुरुकुलों में वरिष्ठ विद्यार्थियों द्वारा कनिष्ठ विद्यार्थियों को पढ़ाने की परंपरा थी। गुरुकुल में विद्यार्थियों की संख्या अधिक होने पर वरिष्ठ छात्र गुरु की सहायता हेतु कनिष्ठ छात्रों को पढ़ाया करते थे। इसी को मॉनिटोरियल पद्धति कहते थे। यह पद्धति वर्तमान समय में भी थोड़े बदले स्वरुप के साथ प्रचलित है। वर्तमान परिवेश में महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में शिक्षण कार्य भार अधिक हो जाने के कारण शोध छात्रों की सहायता से कनिष्ठ छात्रों को अध्यापित करवाया जाता है। इसा प्रकार, यह विधि आज भी प्रासंगिक है।

अभ्यास प्रश्न

1. छात्र का गुरुकुल में प्रवेश उपनयन संस्कार के बाद होता था। (सत्य/असत्य)
2. मौखिक शिक्षण पद्धति में पहले शिष्य द्वारा वेद मंत्रों का उच्चारण किया जाता था फिर गुरु द्वारा। (सत्य/असत्य)
3. वाद-विवाद विधि में सिर्फ पढ़ाए जाने वाले पाठ के पक्ष में तर्क दिए जाते थे। (सत्य/असत्य)
4. प्रश्नोत्तर विधि से पढ़ाए जानेवाले प्रत्येक पाठ में कुल 60 प्रश्न होते थे। (सत्य/असत्य)
5. प्रश्नोत्तर विधि का वर्णन उपनिषदों में मिलता है। (सत्य/असत्य)
6. _____नामक बौद्ध ग्रंथ में यूनानी राजा मिनांडर एवं बौद्ध भिक्षु _____के मध्य प्रश्नोत्तर का ज़िक्र है।

7. पाणिनी ने अपने पुस्तक अष्टाध्यायी में _____का प्रयोग किया है।
8. कहानी कथन विधि से सामान्यतः_____शिक्षा दी जाती थी।
9. भाषण विधि के प्रयोग का वर्णन_____के ग्रंथ_____ में मिलता है।

1.3.2 पाठ्यपुस्तक विधि

पाठ्यपुस्तक विधि का सामान्य अर्थ है, पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से शिक्षा। यह विधि अंग्रेजों की देन है। इस विधि के पीछे यह मान्यता करती है कि मनुष्य स्मरण के साथ-साथ विस्मरण भी करता है। विस्मरण की स्थिति में पुनर्स्मरण करने के लिए ज्ञान को पुस्तकों के रुप में संरक्षित करना चाहिए। भारत में इस विधि के प्रबल समर्थक डॉक्टर वैस्ट थे। डॉक्टर वैस्ट की यह मान्यता थी की पढ़ने में दक्षता प्राप्त करना, लिखने और बोलने में दक्षता प्राप्त करने की तुलना में अधिक सरल एवं लाभदायी है। अतः, इसका ग्राह्य मूल्य भी अधिक होता है। ग्राह्य मूल्य से आशय विद्यार्थी को अपने पाठ्यक्रम को अपूर्ण छोड़ने पर प्राप्त होने वाले लाभ से है। वास्तव में यह विधि भारत में अंग्रेजों के साथ आई। मैकाले ने शिक्षा नीति दी जिसके परिणाम स्वरुप भारत में अंग्रेजी का बहुत प्रचार-प्रसार हुआ। आंग्ल भाषा के प्रचार-प्रसार में पाठ्यपुस्तकों ने महती भूमिका निभाई। डॉक्टर वैस्ट के अनुसार, शिक्षण को इस ढंग से नियोजित किया जाना चाहिए कि छात्र जब भी विद्यालय छोड़े अपने पठित अंश का अधिकतम लाभ उठाने में सक्षम हो क्योंकि इसी लाभ का सर्वाधिक महत्व है। इस विधि के महत्व को देखकर इसका प्रयोग संस्कृत शिक्षण में भी किया जाने लगा ताकि छात्रों को अधिकतम ग्राह्य मूल्य मिल सके।

इस विधि में सर्वप्रथम विद्यार्थी के परिवेश तथा उसकी कक्षा के अनुकूल विषय सामग्री और शब्दावली का वर्गीकरण कर उसे पुस्तक के रूप में विकसित किया जाता है। विषयवस्तु के रुप में क्रमशः वर्णमाला, शब्द, वाक्य, अनुच्छेद आदि का ज्ञान कराया जाता है। संस्कृत भाषा शिक्षण के लिए संस्कृत के विद्वानों द्वारा ऐसी अनेक पुस्तकें तैयार की गई। ईश्वरचंद विद्यासागर कृत 'संस्कृत पाठ्यपुस्तक', जीवानंद विद्यासागर की 'संस्कृत शिक्षा मंजरी' बी० बी० कमल की 'सुबोध संस्कृतम् ' एस० डी० सातवेलकर की 'संस्कृत टीचर' आदि इस क्षेत्र में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन पुस्तकों के माध्यम से छात्रों को संस्कृत भाषा की ध्वनियों, वर्णों, श्लोकों, अनुच्छेदों आदि का ज्ञान प्रदान किया जाता है। इन पाठ्यपुस्तकों का प्रयोग विद्यार्थी भी स्वअध्ययन के लिए करते हैं और शिक्षक भी अपने शिक्षण कार्य के लिए करते हैं। इस विधि से शिक्षण करते समय पाठ्य पुस्तक में वर्णित पाठ को ही केंद्र में रखा जाता है। शिक्षण प्रक्रिया सामान्यतः निम्नलिखित चरणों में संपन्न की जाती है।

1. पहले शिक्षक द्वारा पाठ का आदर्श संस्कृत वाचन किया जाता है।
2. इसके पश्चात छात्र द्वारा पाठ का अनुकरण वाचन किया जाता है।
3. शिक्षक द्वारा पाठ में आए कठिन शब्दों का विद्यार्थी की मातृभाषा में अर्थ निरूपण किया जाता है।
4. इसके बाद विद्यार्थियों को मौन वाचन करने के लिए कहा जाता है लेकिन यह आवश्यक नहीं है। यह शिक्षक निर्धारित करता है।

इस प्रकार संपूर्ण पाठ का शिक्षण कार्य कर लेने के बाद छात्रों को अभ्यास का अवसर दिया जाता है। व्याकरण के नियम एवं अनुवाद कार्य का भी अभ्यास कराया जाता है।

पाठ्यपुस्तक विधि की विशेषताएँ

इस विधि की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं-

i. विद्यार्थी को संस्कृत वाचन का अभ्यास करने का पर्याप्त अवसर मिलता है
ii. विद्यार्थी के शब्द भंडार में वृद्धि होती है
iii. विद्यार्थी में संस्कृत भाषा एवं साहित्य के प्रति रुचि उत्पन्न होती है
iv. उच्चस्तरीय कक्षाओं को पढ़ाने के लिए यह सर्वोत्तम विधि है;
v. यह आवश्यक शैक्षिक सामग्रियों के अभाव को कम करता है।

पाठ्यपुस्तक विधि की सीमाएँ-

इस विधि की निम्म्लिखित सीमाएँ हैं-

i. इस विधि में मौखिक अभिव्यक्ति को महत्व नहीं दिया जाता है।
ii. इस विधि से संस्कृत भाषा का शिक्षण करने पर विद्यार्थियों को अपने उच्चारण दोष को सुधारने के कम अवसर मिलते हैं।
iii. इस विधि में व्याकरण को विशेष महत्व नहीं मिल पाता है।
iv. यह विधि छात्रों में नीरसता उत्पन्न करती है।

1.3.3 सुगम पद्धति अथवा निर्बाध विधि

इस विधि का विकास अंग्रेजी भाषा को विदेशी भाषा के रूप में सिखाने के लिए किया गया था। इस विधि के तीन मुख्य तत्व होते हैं:

i. मौखिक कार्य की बहुलता
ii. मातृभाषा की पूर्ण रूपेण उपेक्षा
iii. वस्तु और शब्द के मध्य संबंध की स्थापना।

यहा विधि वाल्टर एनफील्ड के 'मदर्स मेथड' पर आधारित है। इस विधि का प्रयोग परसा विद्यालय में ग्रीक एवं लैटिन पढ़ाने के लिए किया गया। यह प्रयोग अत्यंत सफल हुआ था। इसका उल्लेख इंग्लैंड की शिक्षा परिषद में किया गया था। शिक्षा परिषद के सदस्यों के अनुसार इस विधि द्वारा कुशल और सिद्धहस्त व्यक्ति छात्रों को अधिक दत्तचित्त बना सकते हैं। इस विधि के अनुसार पाठ को तैयार करते ही छात्र भाषा का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। फलतः उनका मस्तिष्क बड़ा ही आत्मनिर्भर एवं सृजनात्मक बन जाता है। संस्कृत शिक्षण के लिए इस विधि का सर्वप्रथम वर्णन प्रोफ़ेसर बी० पी० बोकिल ने अपनी पुस्तक न्यू अप्रोच टू संस्कृत में किया है। इस विधि का व्यवहारिक प्रयोग भी सर्वप्रथम प्रोफेसर बोकिल ने ही एलिफेंट ट्यून हाई स्कूल मुंबई में किया था। इस विधि से शिक्षण कार्य करते समय किसी अन्य भाषा का

सहारा नहीं लिया जाता है। छात्र को संस्कृत भाषा में ही सीखना होता है और अपने भावों की अभिव्यक्ति संस्कृत भाषा में ही करनी होती है। ताकि संस्कृत में उनका पूरा अधिकार हो जाए और छात्र संस्कृत भाषा में भी अपनी मातृभाषा जितना ही दक्ष हो जाए। इस विधि में शिक्षक छात्र से प्रश्न पूछता है और छात्र उसका उत्तर देते हैं। इस प्रकार, शिक्षक छात्र को सरल वाक्य के निर्माण हेतु प्रोत्साहित करता है। इस प्रणाली में वाक्य को भाषा की सबसे छोटी इकाई मानी जाती है। इस प्रणाली में मातृभाषा की पूर्ण रुप से उपेक्षा होती है। विद्यार्थी संस्कृत में ही बोलता है, संस्कृत ही सुनता है। इस प्रकार, उसके आसपास के वातावरण को संस्कृतमय कर दिया जाता है। विद्यार्थी पहले चार वाक्य बोलता है, फिर एक अनुच्छेद और फिर धीरे-धीरे इस भाषा में दक्षता प्राप्त कर लेता है।

सुगम पद्धति या निर्बाध विधि की विशेषताएँ

इस विधि की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं-

1. इस विधि से संस्कृत शिक्षण विद्यार्थियों में भाषा विशेष के प्रति रुचि उत्पन्न करता है।
2. यह विधि छात्र को शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में सक्रिय बनाए रखती है।
3. इस विधि में बोलने पर अत्यधिक बल प्रदान किया जाता है इसलिए इसमें उच्चारण की शुद्धता का अभ्यास होता है।
4. इस विधि से शिक्षण करने पर छात्रों को सुनकर अर्थ को समझने का अभ्यास करने का पर्याप्त अवसर मिलता है। अभ्यास के कारण श्रवण कौशल का भी पर्याप्त विकास होता है।

सुगम पद्धति या निर्बाध विधि की सीमाएँ

इस विधि की निम्नलिखित सीमाएँ हैं-

1. इस विधि की उपयोगिता केवल मेधावी छात्रों के लिए मानी गई है।
2. इंग्लैंड की शिक्षा परिषद में तो इस विधि की सफलता के संबंध में जो आशंका व्यक्त की गई थी उसके अनुसार तो यह विधि मेधावी छात्रों के लिए भी उपयोगी होगी कि नहीं, यह संदेहास्पद है।
3. यह विधि समय साध्य है।
4. इस विधि में प्रत्येक विद्यार्थी पर व्यक्तिगत रुप से ध्यान देना पड़ेगा जो कि विद्यालय की समय सारणी को ध्यान में रखते हुए संभव नहीं है।
5. संस्कृत अध्यापकों का मातृभाषा में उपयोग करने की योग्यता का न होना भी इस विधि की एक सीमा है।

अभ्यास प्रश्न

10. भारत में पाठ्यपुस्तक विधि के प्रबल समर्थक कौन थे?
11. 'ग्राह्य मूल्य' से आप क्या समझते हैं?

12. पाठ्यपुस्तक विधि द्वारा संस्कृता शिक्षण करने के लिए ईश्वरा चंद विद्यासागरा ने किस पुस्तक की रचना की थी।
13. सुगम या निर्बाध विधि का प्रयोग कहाँ अत्यंत सफल हुआ था?
14. भारत में सुगम अथवा निर्बाध विधि के जनक कौन माने जाते हैं?
15. आंग्ल भाषा के प्रचार-प्रसार में पाठ्यपुस्तकों की महती भूमिका निभाई। (सत्य/असत्य)।
16. 'सुबोध संस्कृतम्' पुस्तक एस० डी० सातवेलकर की रचना है। (सत्य/असत्य)।
17. 'पाठ्यपुस्तक विधि' से शिक्षण में विद्यार्थी के शब्द-भंडार में वृद्धि होती है। (सत्य/असत्य)।
18. निर्बाध विधि में मौखिक कार्य को अति अल्प मात्रा में स्थान दिया जाता है। (सत्य/असत्य)
19. 'न्यु एप्रोच टू संस्कृत' में वी० पी० बोकिल द्वारा लिखित पुस्तक का नाम है। (सत्य/असत्य)

1.3.4 व्याकरण-अनुवाद विधि

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इस विधि से शिक्षण करने के लिए व्याकरण एवं अनुवाद पद्धति का सहारा लिया जाता है। जिस भाषा का शिक्षण करना होता है उस भाषा के व्याकरण का प्रयोग किया जाता है। अनुवाद में दो भाषाओं की आवश्यकता होती है। एक को स्रोत भाषा कहते हैं तथा दूसरे को लक्ष्य भाषा। जिस भाषा के पाठ का अनुवाद किया जाता है उसे स्रोत भाषा एवं जिस भाषा में अनुवाद किया जाता है उसे लक्ष्य भाषा कहते हैं। जिस भाषा का शिक्षण करना होता है उस भाषा से विद्यार्थी की मातृभाषा एवं विद्यार्थी की मातृभाषा से जिसा भाषा का शिक्षण किया जा रहा है, उस भाषा में अनुवाद किया जाता है और करवाया जाता है। संस्कृत भाषा के संदर्भ में संस्कृत व्याकरण की सहायता ली जाती है। संस्कृत भाषा से हिंदी या विद्यार्थी की मातृभाषा में तथा हिंदी या विद्यार्थी की मातृभाषा से संस्कृत में अनुवाद किया जाता है एवं करवाया जाता है। इस विधि का भारत वर्ष में पहली बार प्रयोग डॉक्टर रामकृष्ण गोपाल भंडारकर ने किया था। उनके सम्मान में इसे डॉक्टर भंडारकर विधि भी कहा जा सकता है। डॉक्टर भंडारकर ने संस्कृत भाषा की दो पुस्तकें तैयार की थी। इन पुस्तकों में उन्होंने व्याकरण- अनुवाद पद्धति का अनुसरण किया था। कालांतर में वामन शिवराम आप्टे, मोरेश्वर रामचंद्र काले आदि विद्वानों ने भी इस पद्धति पर आधारित संस्कृत शिक्षण की पुस्तकों का विकास किया। इस पद्धति में विद्यार्थियों को पहले व्याकरण का ज्ञान कराया जाता है। फिर व्याकराण के नियमों के अभ्यास के लिए अनुवाद एवं अन्य अभ्यास कार्यों द्वारा संस्कृत भाषा का ज्ञान प्रदान किया जाता है। इस पद्धति कि विद्वानों द्वारा अक्सर इस बात को लेकर आलोचना की जाती है कि यह प्रारंभ में ही विद्यार्थियों को व्याकरण के भारी-भरकम नियमों को पढ़ाकर उनमेंनीरसताको जन्म देता है लेकिन यहा बात सत्य नहीं है। यह पद्धति मुख्यतः संस्कृत भाषा को छात्रों के समक्ष मनोवैज्ञानिक एवं सरल ढंग से प्रस्तुत करने के लिए समर्पित है। यह विधि विद्यार्थियों को व्याकरण के भारी-भरकम नियमों को रटवाने के बजाय उसके सरल नियमों को आधुनिकतम ढंग से छात्रों के समक्ष प्रस्तुत कर उनके अवबोध शक्ति को जागृत करने पर बल देता है। इन नियमों का बोध हो जाने पर संस्कृत का हिंदी अथवा छात्र की मातृभाषा में तथा हिंदी अथवा छात्र की मातृभाषा से संस्कृत में अनुवाद के माध्यम से छात्रों को संस्कृत साहित्य का परिचय कराया जाता है।

व्याकरण-अनुवाद विधि की विशेषताएँ - इस विधि की निम्न्लिखित विशेषताएँ हैं:

i. स्वाध्याय के माध्यम से संस्कृत का ज्ञान प्राप्त करने वाले छात्रों के लिए यह विधि बहुत उपयोगी है
ii. यह विधि आधुनिक विद्यालयों के अनुकूल है

व्याकरण-अनुवाद विधि की सीमाएँ – इस विधि की सबसे बड़ी सीमा यह है कि यह छात्रों में नीरसता उत्पन्न करती है।

1.3.5 वार्तालाप विधि या संवाद विधि या संप्रेषणात्मक विधि

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इस विधि में दो या अधिक व्यक्तियों के मध्य संवाद के माध्यम से शिक्षा दी जाती है। पाठ को वार्तालाप के रुप में तैयार किया जाता है। छात्र उसका अध्ययन करते हैं, उसे समझते हैं तथा उसका अभिनय करते हैं। इस प्रकार छात्र उस भाषा में अपने भावों की अभिव्यक्ति करना सीख लेते हैं, विभिन्न अवसरों पर बोली जाने वाली भाषा के प्रयोग में दक्षता प्राप्त कर लेते हैं, ध्वनि के विविध तत्व, यथा- अनुतान, स्वराघात आदि का प्रयोग भी सीख लेते हैं। इसके साथ ही साथ भाषा के साथ आनन अभिव्यक्ति का प्रयोग भी विद्यार्थी सीख लेता है। इस विधि से संस्कृत शिक्षण करने के लिए विशेष प्रकार के पाठ्यपुस्तकों का निर्माण करना पड़ता है जिनमें अभिनय किए जाने योग्य संवाद का प्रचुर मात्रा में समावेश रहता है। इस प्रकार के पाठ का एक उदाहरण निम्नवत है:

अथ वार्तलापम्

विद्यालयस्य संस्कृतिमहोत्सवः

मोहनः - भो मित्र ! कुतः आगच्छसि?

सोहनः - विद्यालयात् आगच्छन् अस्मि।

मोहनः - इदानीं षडवादने?

सोहनः - आम, अद्य विद्यालये कार्यक्रमः आसीत्। अतः, अद्य विलम्बो जातः।

मोहनः - कः कार्यक्रमः आसीत् विद्यालये?

सोहनः - विद्यालये संस्कृतिमहोत्सवः आसीत्, महोत्सवे अस्मिन बहवः जनाः आगतवन्तः आसन्।

मोहनः - वाह्य जनाः अपि विद्यालये अद्य गतवन्तः किम्?

सोहनः - आम्, अद्य समेषां कृते आयोजनम् आसीत्, अहमपि प्रतिभागी रुपेण तत्र आसम्।

मोहनः - त्वं तु वाचालः नास्ति चेत् कथं तत्र प्रतिभागिता गृहीतवान्।

सोहन: - आम्, अहं वाचालः नास्मि परं गुरुमहोदयानाम् आदेशः आसीत्। यत् सर्वे छात्रा: महोत्सवे भागं ग्रहिष्यन्ति।

मोहनः - महोत्सवे का का प्रतियोगिता आयोजिता आसीत्।

सोहनः - मित्र ! वाद-विवादः, सम्भाषणं, काव्यपाठः, निबंधलेखनादि

प्रतियोगिता आयोजिता आसीत्।

मोहनः - तर्हि त्वं कस्यां प्रतोयोगितायामासीत्?

सोहनः – अहं तु सम्भाषण प्रतियोगितायामासम् एवंच प्रथमंस्थानमपि अप्राप्नुवम्।

मोहनः - सम्भाषणस्य कः विषयः आसीत्?

सोहनः - "भारतस्य संस्कृति-सभ्यता च" अयमेव विषयः आसीत्।

मोहनः - बहुशोभनम्।

सोहनः - धन्यवादः।

मोहनः - धन्यवादेन कार्यं न चलिष्यति, चलतु मिष्ठानं खादावः।

सोहनः - अवश्यम्। चलतु पुरतः एव मिष्ठान्न भंडार: अस्ति।

इति वार्तालापः

पाठ के अंत में या बीच-बीच में शिक्षक छात्र से प्रश्न पूछता रहता है जिससे शिक्षक एवं छात्रों के मध्य वार्तालाप होता रहता है। पाठ में, व्याकरण के विभिन्न नियमों के हुए प्रयोग की व्याख्या, शिक्षक पाठ के अंत में वार्तालाप के माध्यम से ही करता है। इस प्रकार, छात्रों को व्याकरण के नियमों की भी जानकारी हो जाती है।

वार्तलाप विधि या संवाद विधि या संप्रेषणात्मक विधि की विशेषताएँ

इस विधि की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं-

i. इस विधि से शिक्षण करने पर छात्रों को मौखिक अभिव्यक्ति के पर्याप्त अवसर मिलते हैं।
ii. विद्यार्थियों को उच्चारण की शुद्धता के अभ्यास का पर्याप्त अवसर मिलता है।
iii. विद्यार्थियों को स्वरों के उचित प्रयोग, अनुत्तान, स्वराघात आदि का भी ज्ञान हो जाता है।

वार्तालाप विधि या संवाद विधि या संप्रेषणात्मक विधि की सीमाएँ

इस विधि की निम्नलिखित सीमाएँ हैं:

i. इस विधि से शिक्षण करने पर विद्यार्थियों में लेखन एवं पठन कौशल का विकास नहीं हो पाता है; तथा
ii. ऐसे प्रशिक्षित शिक्षक, जो कि संस्कृत में वार्तलाप कर सके, की कमी भी इसा विधिकी एक सीमा है।

1.3.6 आगमन-निगमन विधि

संस्कृत में व्याकरण शिक्षण की सर्वाधिक प्राचीन एवं प्रचलित विधि आगमन-निगमन विधि है। वास्तव में यह दो विधियों आगमन विधि एवं निगमन विधि का समुच्चय है। इन दोनों विधियों का अलग-अलग एवं

संयुक्त रूप में भी प्रयोग किया जाता है। आगमन विधि में पहले उदाहरणों को बताया जाता है फिर तत्संबंधी व्याकरण के नियमों की शिक्षा दी जाती है। इसके विपरीत निगमन विधि में पाली व्याकरण के नियमों को बताया जाता है फिर उससे संबंधित उदाहरण दिए जाते हैं और उन नियमों का अभ्यास कराया जाता है। दूसरे शब्दों में, यह भी कहा जा सकता है कि निगमन विधि आगमन विधि के ठीक विपरीत विधि है। जब इन दोनों विधियों का साथ-साथ प्रयोग किया जाता है तब आगमन विधि द्वारा नियमों को प्रतिपादित कर निगमन विधि द्वारा नियमों का अभ्यास कराया जाता है। अभ्यास के पश्चात उन नियमों की पुष्टि उदाहरण द्वारा की जाती है। उदाहरणार्थ, यदि छात्रों को संधि पढ़या जा रहा है तो पहले संधि का नियम बताया जाता है फिर उसके बाद छात्रों से संधि का अभ्यास कराया जाता है। तत्पश्चात कुछ शब्द देकर संधि के भेद पहचानने के लिए कहा जाता है।

- **आगमन-निगमन विधि की विशेषताएँ -** आगमन विधि का प्रयोग शिक्षण को रुचिकर बना देता है।
- **निगमन विधि की सीमाएँ -** निगमन विधि का पृथक प्रयोग शिक्षण को नीरस एवं अमनोवैज्ञानिक बना देता है।

संस्कृत शिक्षण की उपरोक्त वर्णित विधियों के इतर एक श्रव्य-भाषिक विधि की चर्चा की जाती है लेकिन मेरे विचारानुसार यह संवाद विधि का ही रूप है। इन विधियों के विवेचन के उपरांत यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कोई भी विधि पूर्ण नहीं है। यह सभी अपर्याप्त है। अतः, इन सभी विधियों को मिलाकर एक मिश्र विधि का प्रयोग संस्कृत शिक्षण के लिए किया जाना चाहिए। इस विधि का एकमात्र उद्देश्य संस्कृत भाषा के सभी पक्षों का विकास करना होना चाहिए

अभ्यास प्रश्न

20. संस्कृत शिक्षण के लिए व्याकरण अनुवाद विधि का प्रयोग भारता वर्ष में पहली बार किसने किया?
21. वार्तालाप विधि को अन्य किन नामों से जाना जाता है?
22. व्याकरण-अनुवाद विधि को डॉ० भंडारकर विधि भी कहा जाता है (सत्य/असत्य)।
23. निगमन विधि का प्रयोग शिक्षण को रुचिकर बना देता है (सत्य/असत्य)।
24. संस्कृत शिक्षण की प्रत्येक विधि अपूर्णा है। (सत्य/असत्य)
25. आगमन विधि का प्रयोग शिक्षण को नीरस बना देता है। (सत्य/असत्य)
26. प्रभावी संस्कृत शिक्षण के लिए सभी विधियों का मिश्रित प्रयोग किया जाना चाहिए। (सत्य/असत्य)